P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-IV* ISSUE-I*September-2016
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय समाज में जातिः अभिशाप और उन्मूलन

राजेन्द्र प्रसाद यादव
एसोसिएट प्रोफेसर,
समाजशास्त्र विभाग,
राजकीय महिला महाविद्यालय,
ढिंढुई,पट्टी,प्रतापगढ़

राजेश कुमार यादव
प्रवक्ता,
समाजशास्त्र विभाग,
श्रीमती कमला राम उदित
पी0 जी0 कालेज,
जयसिंहपुर, अमेठी,
उ0 प्र0

सारांश

भारतीय समाज हजारों वर्षों से वर्ण व्यवस्था एवं उसके विस्तृत रूप–जाति व्यवस्था के द्वारा भी जाना जाता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था जाति के ताने–बाने से गुंथी हुई है। भारत में रहने वाले न केवल हिन्दू बल्कि मुसलमान व ईसाई भी जातिगत संरचना से किसी–न–किसी रूप में प्रभावित हुए हैं। यद्यपि जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज को लंबे समय तक एक सामाजिक और आर्थिक संगठन प्रदान किया है किन्तु उसकी जन्मगत जकड़न ने जिस तरह से समाज को विभाजित और कमजोर किया वह भारत की गुलामी के इतिहास का एक महत्वपूर्ण लंबा अध्याय है। वर्तमान में भी आरक्षण के मुद्दे को जातिगत राजनीति का रूप देकर समाज में जातिगत भेदभाव फैलाने का षडयंत्र रचा जा रहा है। वह जन–विरोधी शक्तियों का नंगा प्रदर्शन हैं अतः न केवल भारतीय समाज को बल्कि भारतीय इतिहास को समझने के लिए जाति–व्यवस्था को समझना आवश्यक है।

मुख्य शब्द : जाति व्यवस्था, जाति प्रथा, भारतीय समाज, सामाजिक व्यवस्था, राजनीति।

प्रस्तावना

प्राचीन काल में हमारे देश में व्यक्ति के गुण और कर्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था का निर्धारण किया गया था और उसे सामाजिक विकास के लिए न केवल उपयोगी बल्कि आवश्यक भी समझा गया था। यद्यपि प्राचीन काल में वर्ण का वास्तविक उद्देश्य एवं उसका स्वरूप क्या था, कहना कठिन है, किन्तु यह निश्चित है कि व्यक्ति और समाज दोनों ही स्तरों पर जीवन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए वर्ण की कल्पना की गयी थी। श्रम एवं कर्तव्य का विभाजन एक समाज के संचालन के लिए आवश्यक होता है और इसी उद्देश्य से वर्णों का भी विभाजन किया गया। श्रम–विभाजन को लक्ष्य करके बनाई गयी व्यवस्था का समर्थन आज भी कई विचारकों ने किया है।

समय के बदलाव के साथ–साथ वर्ण व्यवस्था का रूप भी बदला और उसने जाति व्यवस्था का रूप धारण कर लिया। समाज में अलग–अलग आर्थिक क्रियाओं के विकास के साथ–साथ अलग–अलग जातियाँ एवं उपजातियाँ बनती गईं। जब जाति का निर्धारण व्यक्ति का गुण एवं कर्म नहीं रह गया बल्कि उसका जन्म निश्चित हो गया तब जाति व्यवस्था ने जाति प्रथा का रूप धारण कर लिया। इससे न केवल जाति संबंधी कट्टरता आई बल्कि उसमें जातिगत ऊँच–नीच की भावना भी आ गई। वर्तमान में भारतीय समाज लगभग 3000 से अधिक जातियों एवं उपजातियों में बंटा हुआ है। यह विभाजन इतना संगठित एवं कट्टर है कि खान–पान से लेकर शादी–विवाह तक जाति समूहो में ही आयोजित किये जाते हैं। यद्यपि आधुनिक पुनर्जागरण काल से शुरू हुई नई सामाजिक चेतना ने इस जाति व्यवस्था को शिथिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। फलस्वरूप खान–पान एवं विवाह अब जाति से भी परे होने लगे हैं।

उद्देश्य

1. सामाजिक संरचना में जाति के प्रभाव का विश्लेषण।
2. भारतीय राजनीति पर जाति के प्रभाव का विश्लेषण।
3. जातिवाद का समाज पर प्रभाव का विश्लेषण।
4. जातिगत भेदभाव का समाज पर प्रभाव का विश्लेषण।
5. जातीय राजनीतिकरण का विश्लेषण।
6. सामाजिक परिवर्तन में जाति के प्रभाव का विश्लेषण।

भारतीय समाज के अध्येताओं ने जाति प्रथा की निम्नलिखित विशेषताएँ बताते हुए कहा है कि जाति प्रथा ने भारतीय समाज को संगठित किया है, विशेषकर मध्यकाल में विदेशियों के अनेक आक्रमणों के बावजूद इस प्रथा ने हिन्दू समाज के आर्थिक एवं सामाजिक स्वरूप को बनाए रखा है। जाति व्यवस्था

ने यद्यपि इस समाज को अलग–अलग रूपों में बांटा है किन्तु सम्पूर्ण समाज के बीच आर्थिक कार्यो एवं सामाजिक सामंजस्य को लेकर भी समन्वय बनाए रखा है। एक जाति के लोगों में परस्पर निकटता का बोध एवं सामुदायिक दृढ़ता प्रदान की है। भारतीय जाति व्यवस्था में हर जाति का सम्पूर्ण व्यवस्था में एक स्तर है जो ऊँच–नीच पर भी आधारित है तथा यह स्तर जन्म पर आधारित होने के कारण स्थिर है। जाति को भाग्यवाद से जोड़ दिया गया है ओर इसको एक विशिष्ट प्रकार के कर्म से भी सम्बद्ध कर दिया गया है। एक जाति विशेष का एक कार्य विशेष से जुड़े होने के कारण उसमें औद्योगिक प्रशिक्षण की संभावनाएँ बनी रहती हैं।

यद्यपि जाति की वजह से भारतीय समाज ने इतिहास के अनेक थपेड़ों से अपने–आपको बचाए रखा है किन्तु उससे जो हानियाँ हुई हैं और हो रही हैं वे बहुत अधिक एवं दूरगामी हैं। जाति ने न केवल एक समाज को लम्बे समय तक, सभी रूप से खंडित रखा बल्कि एक जाति और दूसरी जाति में इतना भेद भी स्थापित कर दिया कि छुआछूत जैसी कलंकित रीति भी चल पड़ी। ऊँच–नीच एवं छुआछूत की भावना भारतीय समाज को बराबर विभाजित और कमजोर करती रही है और एक अच्छे विकसित, ज्ञान–सम्पन्न समाज को हजारों वर्षों तक बाहर की चंद शक्तियों के द्वारा गुलाम बनाए रखा है। दरअसल इस समाज को जाति–व्यवस्था ने ही एक नहीं होने दिया। इसलिए भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता के बावजूद राष्ट्रीयता की भावना यहाँ विकसित नहीं हो पायी। जातिगत हीनता की भावना से ग्रस्त होकर प्रतिवर्ष हजारों शूद्र हिन्दू धर्म को त्यागकर अन्य धर्मों (इस्लाम, ईसाई एवं बौद्ध) में परिवर्तित हो रहे हैं। धर्म–परिवर्तन की इस प्रक्रिया ने भारतीय समाज को इतना खंडित किया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय अंततः राष्ट्रीयता भी खंडित हुई। जाति व्यवस्था से कमजोर एवं विभाजित बने समाज पर विदेशियों द्वारा हमारे ऊपर विजय पाना तो आसान बना ही रहा, साथ ही उन्नीसवीं शताब्दी में मध्य में छिड़ा स्वतंत्रता आन्दोलन भी इस जाति प्रथा के कारण इतना मजबूत नहीं बन पाया और वह लगभग 100 वर्षों तक लंबा खिंचता रहा।

आजादी के बाद इस जाति व्यवस्था ने स्वतंत्र भारत के राजनेताओं की रगों में प्रवेश किया और वह वोट प्राप्त करने का जरिया बन गई। आजादी के 50 वर्ष बीतने के बाद आज भी सभी राजनीतिक दल अपने उम्मीदवारों को जातीय समीकरण के आधार पर खड़ा करते हैं, वोट मांगते हैं। वोट की राजनीति ने भारतीय संविधान में जातिगत आरक्षण का प्रावधान किया। इससे इस व्यवस्था का पिछड़ी जातियों के चंद विकसित लोगों ने न केवल दुरुपयोग किया बल्कि सवर्ण और पिछड़ी जातियों के बीच वैमनस्य भी बढ़ाया। मंडल आयोग ने जाति पर आधारित आरक्षण के सवाल को पुनः उजागर किया तो उसके विरोध में चले युवावर्ग के आंदोलन ने भारतीय समाज की युवा मानसिकता को गहराई से विचलित कर दिया। भारतीय समुदाय के विकास का आधार अर्थ होने के साथ–साथ जाति भी रही। इसके फलस्वरूप भारतीय समाज में सामंजस्य बिठाने की जो प्रक्रिया पुनर्जागरण काल से शुरू हुई थी वह स्वतन्त्र्योत्तर काल में राजनेताओं के हाथों पड़कर धीमी पड़ गई। सभी राजनीतिक दल जाति के जहर को लेकर अपना राजनीतिक कार्य–व्यापार करते हैं तथा समाज को बांटकर एक–दूसरे के विरुद्ध लड़ाते हैं और उसके विभाजन को पक्का करते रहते हैं। हत्या, अपहरण, बलात्कार आदि अपराध भी काफी कुछ जातिगत आधार पर किए जाते हैं। सन् 2003 में जातिगत आरक्षण को वोट देने और लेने का आधार बनाने का प्रयास किया गया है किन्तु यह इतिहास के पहिए को उलटा घुमाने का निकृष्ट, मानव–विरोधी, विकास–विमुख प्रयास है।

परम्परागत राजनीति एवं सामाजिक व्यवस्था से भिन्न आधुनिक शिक्षा ने, पश्चिमी सभ्यता व संस्कृति के प्रभाव ने, रोजगार एवं शहरीकरण, बदलती सामाजिक–भौगोलिक व्यवस्था ने जाति व्यवस्था का बहुत शिथिल किया है। समता एवं स्वतंत्रता आधारित आधुनिक शिक्षा व्यवस्था विकसित हुई है और उसने युवा पीढ़ी को जातिगत कट्टरता से उबारा है। इसलिए जातिगत को लांघकर खान–पान एवं शादी–विवाह प्रारम्भ हुए हैं। व्यक्ति का अपने पारम्परिक कर्म को छोड़कर अन्य काम करने, शहरों में अनेक जातियों द्वारा मिलजुलकर बसी हुई बस्तियों में रहने, रोजगार के लिए अपनी जाति के लोगों से परे हटकर दूसरी जाति के लोगों के साथ रहने से जातिगत संकीर्णता में कमी आई हैं फिल्म, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, साहित्य आदि के द्वारा जातिमुक्त व्यक्ति का जो स्वरूप सामने आया है उसने युवा पीढ़ी के मानस को प्रभावित किया है। भारतीय समाज का इलेक्ट्रानिक मीडिया के द्वारा विशेष रूप से पश्चिमी समाज से जो सम्पर्क हुआ है उसने मनुष्य की जाति– रहित समाज व्यवस्था का स्वरूप भी सामने रखा है। सरकारी स्तर पर भी समाज के पिछड़े वर्गों विशेषकर हरिजनों को विशेष अधिकार आरक्षण द्वारा प्रदान कर उनको समाज की मुख्य धारा में लाने का प्रयास किया गया। सार्वजनिक स्थानों पर खान–पान, उठने–बैठने, शादी–विवाह आदि सम्बन्धों की मान्यताएँ बदली हैं तथा अन्तरजातीय विवाह के प्रति उदारता बढ़ने लगी है। यद्यपि लोकतंत्र के नाम पर, जाति के नाम पर वोट बटोरने का राजनीतिक षडयंत्र जारी है जो कि भारतीय राजनीति के वैचारिक दिवालिएपन को जाहिर करता है किन्तु राजनीति द्वारा अपने व्यक्तिगत अथवा दलगत स्वार्थ की पूर्ति में जाति को इस्तेमाल करने की कलई भी काफी मतदाताओं में खुलनी लगी है। दरअसल जाति व्यवस्था में पहले जैसी कट्टरता नहीं रही है। जो जाति के नाम पर सभा–सम्मेलन–संगठन है, ये जातीय दर्प (गौरव) के मंच नही हैं बल्कि वैयक्तिक स्वार्थों की पूर्ति के समूह हैं जो अंततः ढहने को हैं, ढहकर रहेंगे।

निष्कर्ष

जाति व्यवस्था मूलतः एक खास तरह की आर्थिक व्यवस्था से पनपी है। मध्यकाल के एक लंबे दौर के बाद आधुनिक युग में भारतीय अर्थव्यवस्था के ढाँचे में तेजी से परिवर्तन आ रहा है। व्यक्तियों के आर्थिक सम्बन्ध

बदलने से उनके रहन–सहन, उनके स्तर, शिक्षा का स्तर, परिवेश तथा अन्य उभरते जा रहे मानव सम्बन्धों के कारण व्यक्ति का जाति–सम्बन्धी सोच बदलने लगा है। भारतीय समाज में इसी परिवर्तन के साथ जाति–सम्बन्धी सोच में और शथिलता आने की संभावना है। ज्यों–ज्यों सामंती सोच से मुक्ति और समाज तथा स्वतंत्रता की जड़ें सुदृढ़ होती जाएँगी त्यों–त्यों जाति सम्बन्धी दीवारें ढहती जाएँगी तथा यह देश जाति–रहित समतामूलक सामाजिक व्यवस्था की ओर उन्मुख होता जाएगा किन्तु भूमण्डलीकरण के इस दौर में भारतीय युवावर्ग जाति व्यवस्था से मुक्त होकर, प्रगतिशील सोच से समन्वित होकर अपने जीवन–लक्ष्यों को तय करेगा, जीवन संघर्ष को रूप देगा, उतना ही वह विकासशील देशों के शोषण से बचेगा और विकास की दौड़ में आगे रहेगा। भारतीय समाज में जाति–व्यवस्था से मुक्त होना इक्कीसवीं शताब्दी के लिए एक नए विकासशील मानव को जन्म देना है और नए भारत के लिए विश्व–शक्ति के रूप में उभार के लिए जाति–व्यवस्था से मुक्ति नितांत आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 जी0के0 अग्रवाल, भारतीय सामाजिक समस्यायेंः साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, वर्ष 2015
2. डॉ0 एम0एल0 गुप्ता एवं डॉ0 डी0डी0 शर्मा, भारतीय सामाजिक समस्यायेंः साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, वर्ष 2014
3. डॉ0 रवीन्द्र नाथ मुकर्जी, भारतीय सामाजिक समस्यायेंः विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, नई दिल्ली, वर्ष 2015
4. डॉ0 बी0आर0 ताम्रकर, समाजशास्त्र की अवधारणाः रावत पब्लिकेशन, जयपुर, वर्ष 2013
5. डॉ0 राम अहूजा, भारतीय सामाजिक समस्यायेंः रावत पब्लिकेशन, जयपुर, वर्ष 2008
6. डॉ0 जी0के0 अग्रवाल, भारतीय समाज, समस्यायें एवं मुद्दे, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, वर्ष 2015
7. डॉ0 रवीन्द्र नाथ मुकर्जी, भारतीय समाजः मुद्दे एवं समस्यायें, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, नई दिल्ली, वर्ष 2013